Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

देशज और अपभ्रंश की गतिशीलता

Dr. Charan Dass*

Lecturer in Hindi, GSSS Shahzadpur, Ambala

सार – ***व्याकरणाचार्य जिस भाषा को अपभ्रंश कहते हैं उसी भाषा को उसमें रचना करने वाले देशी भाषा कहते हैं। अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है-भ्रष्ट, विकृत, अशुद्ध। भाषा के सामान्य मानदण्ड से जो शब्द रूप विकृत हों वे अपभ्रंश हैं। यह अवश्य है कि भाषा का एक सामान्य मानदण्ड बोलियों के अनेक विकृत शब्द रूपों से ही स्थिर होता है किन्तु, उसके साथ ही यह भी निश्चित है कि लोक व्यवहार में उस सामान्य मान के भी विकार होते रहते हैं।***

----------X----------

असल में प्राचीन युग में लोक व्यवहार में प्रचलित अपभ्रंश को ही देशज कहते थे। पतंजलि ने भी लोक व्यवहार में प्रचलित बोली या भाषा को अपभ्रंश कहा है। उनके महाभाष्य, में अपभ्रंश शब्द को पाकर डॉ. नामवर सिंह ने आश्चर्य प्रकट किया है- पतंजलि जैसे लोकवादी मुनि के मुख से बोली के शब्दों के लिये अपशब्द और अपभ्रंश संज्ञा का प्रयोग सुनकर आश्चर्य होता है, क्योंकि उन्होंने स्थान-स्थान पर लोक प्रचलित शब्द रूपों को लक्षित ही नहीं किया है, बल्कि शब्द प्रयोग के विषय में लोक को ही प्रमाण माना है। लोक अपभ्रंश को ही देशी अपभ्रंश कहते हैं। देशी अपभ्रंश से तात्पर्य उस भाषा से है, जिसका तत्कालीन सामान्य जन से निकट का सम्बन्ध था। वैसे पतंजलि ने यह माना है कि एक ही शब्द के बहुत से अपभ्रंश हो सकते हैं, जैसे 'गो' शब्द के गोवा, गौणी, गोता। गोपो गोलका आदि, पतंजलि की दृष्टि में अपभ्रंश शब्द बोली विशेष, शब्द विशेष तथा भाषा-विशेष के लिए प्रयुक्त होता रहा। वास्तव में पतंजलि ने इस माध्यम से उस समय का प्रचलित बोलियों के प्रति इंगत किया है। इन बोलियों में प्रयुक्त लोक भाषा के शब्द हैं, बाद में अपभ्रंश कहलाए। जार्ज ग्रियर्सन ने भी लौकिक शब्दों का अस्तित्व संस्कृत में स्वीकार किया है। एक ओर पाणिनि की भाषा में भी लौकिक शब्दों का प्रयोग है। सम्भवतः लौकिक शब्द या भाषा का प्रयोग वेदिक कन्दस से पृथकत्व स्थापित करने के लिए किया गया। पाणिनि के समय तक वैदिक भाषा ही साहित्यिक भाषा थी किन्तु, ब्राह्मणों और उपनिषदों की भाषा से ज्ञात होता है कि वेद भाषा देव भाषा हो गई तथा कुरू-पांचाल आदि की जन भाषा साहित्यिक भाषा के स्तर की ओर अग्रसित हुई। अनेक जनपदीय प्रयोग चल पड़ने के कारण भाषा के स्वरूप में अस्थिरता और अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। डॉ. हरदेव बाहरी ने इस सन्दर्भ में लिखा है-पाणिनि ने विषमता में एकता और विविधता में समरूपता लाकर उस भाषा को स्थिर और सुसंस्कृत किया। वास्तव में पाणिनि के समय (ईसवी) पूर्व 300 तक संस्कृत में लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग बहुतायत से होता था, विभिन्न जनपदों में प्रचलित संस्कृत में जनपदीय बोलियों के शब्द विपुल मात्रा में प्रयुक्त होते थे।

डॉ. सुनीत कुमार चाटुर्ज्या के कथन से इस बात की पुष्टि होती है-पाणिनि के समय में लौकिक या प्रचलित संस्कृत का भारतीय आर्य प्रादेशिक बोलियों में सम्भवतः वही स्थान रहा होगा जो आधुनिक काल में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का है।

जन-साधारण सर्वत्र संस्कृत समझ लेता था, फिर चाहे वह पूरब का ही रहा हो, जहाँ से प्राकृत अद्भुत जान पड़ता है। वास्तव में प्रत्येक काल में भाषा की दो स्थितियाँ रही हैं। प्रथम स्थिति वह जिसमें कि साहित्यिक रचनायें होती हैं और दूसरी वह जिसे साहित्योत्तर भाषा-या जन बोली या लोक भाषा कहा जाता है। प्राचीन युग में लौकिक संस्कृत जब व्याकरणों के ढाँचे में ढलकर शिक्षित समुदाय तक सीमित हो गई तब तत्कालीन बोलियाँ जन-समुदाय का समर्थन पाकर विकसित होने लगी। ऐसी ही एक सुसंस्कृत बोली को पाली कहा गया जिसमें भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया। पालिकाल में जनपदों में प्रचलित अनेक बोलियों का प्रयोग होने लगा था। जिन्हें प्राकृत कहा गया, प्राकृत काल में ही अपभ्रंश का प्रचलन हो गया था। वस्तुतः प्राकृत जब साहित्य की भाषा हो गई, तब जन साधारण में प्रचलित बोली अपभ्रंश के रूप में विकसित हुई। साधु ने लिखा है-अपभ्रंश प्राकृत का ही एक रूप है, उसे जानने का सर्वोत्तम साधन लोक है। अपभ्रंश एक

www.ignited.in

गत्यात्मक बोली के रूप में बहुत समय से प्रचलित रही है पर छठवीं शती से उसका प्रयोग भाषा विशेष के रूप में मिलने लगता है।

प्रो. रिचर्ड पिशल ने अपभ्रंश के विषय में लिखा है कि मोटे तौर पर देखने से पता चलता है कि प्रामाणिक संस्कृत से जो बोली थोड़ा बहुत भेद दिखाती है, वह अपभ्रंश है। इसलिए भारत की जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं का नाम अपभ्रंश पड़ा और बहुत बाद की प्राकृत भाषाओं में से एक बोली का नाम भी अपभ्रंश रखा गया। यह भाषा जनता के दिन-रात के व्यवहार में आने वाली बोलियों में से उपजी और प्राकृत की अन्य भाषाओं की तरह थोड़ा-बहुत हेर-फेर के साथ साहित्यिक बन गयी। अपभ्रंश भाषा की बोलियों सिन्ध से लेकर बंगाल तक बोली जाती थी। परन्तु साहित्यिक माध्यम के रूप में पश्चिमी अपभ्रंश ही व्यवहृत होती थी। इसलिये हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के भेदों की कोई चर्चा नहीं की। प्रो. पिशल ने प्राकृत से उपजी और देशी भाषा-दोनों को अपभ्रंश कहा है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी अपभ्रंश को देशी भाषा के रूप में स्वीकार किया है और उन्हें आरंभिक अपभ्रंश कहा है। लेकिन हर्मन याकोवी ने अपभ्रंश को देशी भाषा मानने से इनकार कर दिया।

याकोवी ने अपभ्रंश को देशी भाषा मानने से इनकार कर दिया। इन्होंनें पिशेल के मत का खण्डन करते हुए लिखा है कि इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृत की अपेक्षा अपभ्रंश में देशी शब्दों और धातुओं की संख्या अधिक है किन्तु उनका मूल स्त्रोत केवल देशी भाषाओं को मानना ठीक नहीं है। क्योंकि अपभ्रंश के वे शब्द आधुनिक भारतीय भाषाओं में कम मिलते हैं, इसलिए अपभ्रंश को देशी भाषा मानना ठीक नहीं।

वास्तविकता यह है कि अपभ्रंश जन-भाषा है, प्राकृत भी जन भाषा है पर प्राकृत शीघ्र ही साहित्यिक भाषा बन गई। लोक में प्राचलित होने के कारण अपभ्रंश और प्राकृत एक दूसरे से मिली जुली भाषाएँ थी। ज्यूल ब्लास ने लिखा है-अपभ्रंश, प्राकृत के साथ अनिश्चित, कभी-कभी बहुत अधिक परिणाम में मिश्रित है। इसके अतिरिक्त वह नवीनता सूचक बोलीपन ग्रहण करता है। अस्तु उससे भाषा सम्बन्धी एक स्थिति का पता चलता है न कि एक भाषा का। प्राकृत भी देशी का एक प्राचीन रूप रहा है और वह बहुत रोचक है क्योंकि इससे उसे छोड़कर अज्ञात-भाषाओं के अस्तित्व का पता चलता है। देशी केवल शैली और आज भी पायी जाने वाली भाषाओं की शब्दावली में लिए गए अंशों की ओर संकेत है। ज्यूलव्लास ने अपभ्रश को अन्तप्रान्तीय विचार विनिमय की भाषा कहा है तथा अपने आरम्भिक रूप में वह एक क्षेत्र की वास्तविक देशी भाषा से ही उत्पन्न हुई थी।

अल्सहीफ ने अपभ्रंश की मुख्य प्रवृति को देशी भाषा से उत्पन्न माना है। यही कारण है कि अपभ्रंश के अनेकानेक शब्दों को देशज या देशी शब्द के अन्तर्गत रखा जाता है। अपभ्रंश के सबसे प्रारम्भ के वास्तविक सुरक्षित अवशेष आनन्द बचन को देवी शतक के एक उदाहरण में और रुद्रट में मिलते हैं। विमल सूरि के अपभ्रंश काव्य में (जो सम्भवतः 300 ई. की रचना है) हम उन शब्दों का खुला प्रयोग पाते हैं, जिनको व्याकरण देशी शब्द कहते हैं अर्थात् ऐसे शब्द जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से स्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार पाँचवी शताब्दी में लिखित पादलिप्त का तरंगवता, (यद्यपि वह प्राकृत में लिखी गई थी) बहुत अधिक देशी शब्द सम्मिलित थे।

पं. केशव प्रसाद मिश्र ने जनरल आफ एशियाटिक सोसायिटी में लिखे गये अपने लेख कन्ट्रोलवर्सीं ओवर दी सिगनीफिकेंट आन अपभ्रंश में सुरक्षित देशी शब्दों की बड़ी संख्या, लगभग बार सशस्त्र, किसी समय में अपभ्रंश के भीतर प्रयुक्त देशी शब्दों के उदाहरण हैं। अपभ्रंश में जन साधारण की भाषा को व्याकरण का आधार मानकर प्राकृत को सरल बनाने का कार्य किया। कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो अपभ्रंश और प्राकृत में कोई मूलभूत अन्तर ही नहीं मानते। इसी तरह वे अपभ्रंश और मूल देशी भाषा में भी कोई विशेष अन्तर करने के पक्षधर नहीं हैं।

डॉ. मायाणी ने लिखा है-अपभ्रंश के विषय में सबसे मुख्य विशेषता यह है कि यह एक मिश्रित रूप की भाषा मालूम पड़ती है। उसके उच्चारण तथा शब्द कोश का मूल एक है तथा व्याकरण का मूल दूसरा ही। प्राकृत के साथ तुलना करने पर अपभ्रंश में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। यो चार बातों में मामूली परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उनका कोई मुख्य अर्थ नहीं है। विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग यह मानता है कि अपभ्रंश मूलतः प्राकृत एंव देशी भाषाओं के शब्दों के आधार पर खड़ी भाषा है। डॉ. याकोबा की मान्यता है-अपभ्रंश मुख्यतः प्राकृत के शब्दकोश और देशी भाषाओं के व्याकरणिक ढाँचे को लेकर खड़ी हुई है। देशी भाषाएँ जो मुख्यतः ग्रामीण जन भाषाएँ मानी जाती थी, शुद्ध रूप में साहित्यिक माध्यम के लिये स्वीकृत नहीं हुए। इसलिये वे साहित्यिक प्राकृत के सूत्र रूप में गूंथ दी गई, इसी का परिणाम अपभ्रंश है।

अपभ्रंश के प्रारम्भिक रूप ई. पूर्व तीसरी शताब्दी से ही मिलने लगते हैं। यह वह युग है। जिसमें प्राकृत से पृथक अपभ्रंश का विकास होने लगा। इस युग में अपभ्रंश विषयक पतंजलि के उल्लेख मिलते हैं। शुद्रक कृत मृदाकटाव में भी अपभ्रंश के अंश मिलते हैं। धरसने द्वितीय के अभिलेख से भी ज्ञात

होता है कि अपभ्रंश भाषा के पद पर उस समय प्रतिष्ठित थी। छठी शताब्दी में भामह ने भी इसका उल्लेख किया है। सही बात यह है कि 550 ई. के बाद अपभ्रंश को संस्कृत, प्राकृत की ही भांति काव्य की भाषा मान लिया गया। लेकिन राहुल सांस्कृत्यायन ने अपभ्रंश का वास्तविक समय 560 से 1200 ई. तक का माना है। इस काल में अपभ्रंश जन बोली से उठकर भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गई। इस काल में एक से एक श्रेष्ठ कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से अपभ्रंश का श्रृंगार करते रहे। इस काल की अपभ्रंश में एक ओर लोक जीवन की जीवन्तता है, तो दूसरी ओर प्रबन्धोचित अभिजात्य है। लोक-जीवन और लोक शैली के विविध रूप अपभ्रंश काव्य में देखे जा सकते हैं।

हेमचन्द्र के समय तक अपभ्रंश अपने चरम विकास से पृथक होकर जन बोली के रूप में विकसित हो चुकी थी। यद्यपि हेमचन्द्र ने बोलियों की विविधता के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा, फिर भी उनके उदाहरण और अपभ्रंश के नियमों से पता चलता है कि वह अपभ्रंश एक स्तर की नहीं रह गई थी। ए.एम. घाटसो ने लिखा है अपभ्रंश कहीं कहीं परिनिष्ठित थी तो कहीं-कहीं जन भाषा के प्रवृत्तियों की परिचायक थी।

डॉ. सुनीत कुमार चाटुर्ज्या ने इस संबंध में लिखा है-जो भाषा यहाँ प्रमाणित की गई है, निसन्देह वह जनता में बोली जाने वाली भाषा पर प्रकाश डालता है। यह अधिक या कम पश्चिमी अपभ्रंश की तरह कृत्रिम साहित्यिक भाषा नहीं है। वास्तव में अपभ्रंश के अध्ययन के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश वहीं जीवन्त रही है जो लोक-जीवन में प्रतिष्ठित और प्रयुक्त होती रही है। इसी को हम लोक अपभ्रंश या देशी अपभ्रंश कह सकते हैं।

डॉ. चन्द्रप्रकाश त्यागी ने ठीक ही लिखा है-लोक बोली या जन बोली का संबंध जब वैदिक काल से जोड़ा जायगा, तब शुद्ध या आर्य संस्कृत के समानान्तर लौकिक या लोक संस्कृत, प्राकृत काल में लोक प्राकृत और अपभ्रंश काल में लोक अपभ्रंश का स्पष्ट क्रमिक रूप दिखाई पड़ेगा। इस प्रकार वह अपभ्रंश जिसका अधिक से अधिक संबंध लोक बोली से हो तथा जो अकृत्रिम प्रवाह में बहने वाली जन भाषा से सामंजस्य रखती है, उसे हम लोक अपभ्रंश की संज्ञा दे सकते हैं।

वैसे यह बात निश्चित है कि हेमचन्द्र के समय लोक अपभ्रंश साहित्यिक या परिनिष्ठित अपभ्रंश के रूप में परिवर्तित हो गई थी। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या हेमचन्द्र के समय में लोक भाषा (जिसे लोक अपभ्रंश कहा जाता था) प्रचलित थी या नहीं। हेमचन्द्र की देशी नाम माला से यह प्रमाण मिलता है कि उस समय की अपभ्रंश परिनिष्ठित न थी पर उसमें लोक शब्दों या देशज शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था। लोक तो अवगन्नव्यः सूत्र के द्वारा हेमचन्द्र ने यही स्पष्ट किया है कि कुछ व्यंजनों के उच्चारण आदि को लोक से ज्ञात किया जाना चाहिए। वैसे कुछ विद्वान यह मानते हैं कि हेमचन्द्र ने अपनी पुस्तक में अपने पूर्व के अपभ्रंश रूपों का ही विवेचन किया है। इस सन्दर्भ में तेरिस्तोरा ने लिखा है- हेमचन्द्र 12वीं शती ईस्वी (1144-1228) में हुए थे। उन्होंने जिसे अपभ्रंश का परिचय दिया है वह उनके पूर्व का है। अतः इस प्रमाण पर शोरसेन की अन्तिम सीमा कम से कम 10वीं शताब्दी ईस्वी रखी जा सकती है। डॉ. मायाणा ने यह स्वीकार किया है कि हेमचन्द्र ने जिस अपभ्रंश को आधार बनाकर देशी नाम माला को रचा है, उसमें ध्वनि एवं रूप प्रक्रिया की दृष्टि से विविध बोलियों का सम्मिश्रण है। डॉ. मायाणी ने लिखा है हेमचन्द्र के उदाहरणों का भाषा में एक ही बोली के लक्षण मिलते हैं या उनमें भिन्न-भिन्न भाषा सामग्री का मिश्रण है। यह प्रश्न हमें दूसरे निर्णय पर ले जाता है। हेमचन्द्रीय अपभ्रंश का व्यवहार एक ही रूप का माना जा सकता है। जहां शास्त्रीय पृथकीकरण की सूक्ष्म और भेदक दृष्टि उस पर पड़ती है, वहाँ उस पर भिन्न-भिन्न काल के विविध तत्वों के मिश्रण की बात स्पष्ट हो जाती है। तात्पर्य यह है कि हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में विविध बोलियों का मिश्रण कराया है। इन्हीं बोलियों के शब्द देशज के रूप में प्रचलित हो गये। हेमचन्द्र के अपभ्रंश और देशज शब्दों के विवेचन और पृथकीकरण के संबंध में एक बात स्पष्ट रखनी चाहिए कि हेमचन्द्र उस काल के व्याकरण हैं, जिस काल में अपभ्रंश केवल साहित्यिक रूप में सुरक्षित था। जार्ज ग्रियर्सन ने इस सन्दर्भ में ठीक ही लिखा है- हेमचन्द्र का समय 12वीं शताब्दी ईस्वी है। उनके लिये अपभ्रंश भाषा संस्कतृ के समान ही साहित्यिक और व्याकरण सम्पन्न थी। उस युग तक वह मृतक भाषा हो चुकी थी। और मात्र साहित्यिक रूप में सुरक्षित थी। डॉ. उदयनारायण तिवारी के मत से भी इस बात की पुष्टि होती है, हेमचन्द्र का अपभ्रंश व्याकरण लिखना ही यह सिद्ध करता है कि उनके समय तक बोलचाल की भाषा अपभ्रंश को छोड़कर आगे बढ़ चली थी। ईसा की तेरहवीं शती से तो आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक साहित्यिक ग्रन्थ मिलने लगते हैं।

हेमचन्द्र ने अपने देशी नाम माला में ऐसे बहुत से शब्दों के प्रयोग किए हैं जो प्रारम्भ में लोक अपभ्रंश के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं पर बाद में वे बोलचाल के शब्दों के रूप में इतने घुलमिल गए कि उनके मूल अर्थ ही लोप होने लगे। कालान्तर में वे देशज शब्द के रूप में पृथक अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। आंकिक, अंधधु, अग्घाण, अच्छ, अव्यिभट्ट असिय, उसावल,

उक्शली, उवकासिय, ओसरिया, ओष, तड़प्पो, काक्खड़, कक्कर, कच्च्वार, कच्चरा, काव या कावड़, करिल्ल, कढ़िव, विलिंच, संखर, कोलिय, खडविक्या, खप्पर, गायरी, खरिक्क, खेह, गोह, घंचिय, घुँट, चाटे टी, चिल्ल, चंग, दिंग, कुल्लि, अक्ल, झुपड़ा, टुँट, टब्बा, ढिल्ल, बिग्गल, घंघा, ढोल, ढोर, तटन्न्टी, पप्पड़, घुक्कोडि, वुक्क, फिक्क, पिल्ह, बोक्ड़, भुठ्डा, भुक्सा, लता आदि ऐसे ही शब्द हैं। एन.वी. दिवेतिया ने प्राकृत व्याकरण के कुछ उद्धरणों के आधार पर यह सिद्ध करना चाहा है कि हेमचन्द्र की भाषा लोक, भाषा ही है, परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं है बल्कि उससे च्युत भाषा है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने दिवेतिया का समर्थन किया है पर वे उनके दिए हुए तर्कों से पूरी तरह सहमत नहीं है क्योंकि उनकी धारणा है यहाँ अपभ्रंश के प्राकृतों के साथ लोक भाषा की तो स्थिति का अनुमान करना उचित नहीं होता क्योंकि प्रान्तों के साथ जिन्हें हेमचन्द्र ने लोक भाषा कहा, मूलतः अपभ्रंश ही थी। विद्वानों के दोनों प्रकार के तर्कों का विश्लेषण करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोक भाषा किसी भाषा विशेष-संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश आदि की नहीं है बल्कि वह सभी साहित्यिक भाषाओं के समानान्तर चलने वाली जन भाषा है। इसी जन-भाषा में देशज शब्दों का उद्भव और विकास का इतिहास दिया हुआ है। यह जन-भाषा नदी के अविरल प्रवाह की तरह है जो निरन्तर गतिवान है। उसे किसी समय विशेष या किसी भाषा विशेष के साथ जोड़ना उचित नहीं प्रतीत होता।

आचार्य विनय मोहन शर्मा ने ठीक ही लिखा है-भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि साहित्यिक भाषा के साथ-साथ लोक भाषा बराबर प्रचलित रही है। कादस संस्कृत में लौकिक भाषा के तत्व निश्चय ही सम्मिलित रहे हैं। लौकिक भाषा साहित्य में व्यवहृत होने के कारण यद्यपि जटिल नियमों से बद्ध हो जाती है, फिर भी लोक भाषा की ओर उन्मुख रहती ही है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि हेमचन्द्र के समय में अपभ्रंश साहित्यिक तथा परिनिष्ठित भाषा के रूप में थी, लोक भाषा के रूप में अपभ्रंश की स्थिति किसी प्रकार भी नहीं स्वीकार की जा सकती। हमे चन्द्र के समय में जो भाषा थी वह परवर्ती अपभ्रंश या लोक अपभ्रंश थी। जिसमें देशज शब्दों की भरमार थी।

संदर्भ:

1. डॉ. नामवर सिंह-हिन्दी के विकास में अपभ्रंश, दरियागंज नई दिल्ली पृ. 92, 98, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. डॉ. उदय नारायण तिवारी-हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, अशोक प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ. 122-126.
3. डॉ. विनयमोहन शर्मा-हिन्दी का व्यावहारिक अध्ययन, राधा पब्लिकेशन, दरियागंज नई दिल्ली पृ. 23.
4. जार्ज ग्रियर्सन-जनरल सर्वे आफ इण्डिया पृ. 71.
5. डॉ. चन्द्रप्रकाश त्यागी-देशी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 40-41.
6. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।

Corresponding Author

Dr. Charan Dass*

Lecturer in Hindi, GSSS Shahzadpur, Ambala

charandass.mtssa@gmail.com